ताण्डव

एकादश सर्ग

गीतिका छन्द

कार्य पूरा हो चुका था, कुरु सभी निःशेष थे ।
समर भूतल पर बचे वस, वैरि के अवशेष थे ।
आज पाण्डव शिविर में सव, वीर मुदित विशेष थे ।
तुमुल जय ध्वनि, नृत्य गायन, परस्पर आश्लेष[1] थे ।।१।।

श्रान्तवपु थे किन्तु मानस, क्षिप्त जय उन्माद में ।
मनाकर उत्सव गए वे, डूव परम प्रमाद में ।
रक्षकों के सहित योद्धा, सव शिविर में सो गए ।
नींद की विश्राम दायिनि, अङ्क[2] में सब खो गए ।।२।।

द्रौणि छिप शार्दूलवत जो, क्रोध से आविष्ट था ।
मात्र क्षण में क्षिप्रगामी, शिविर मध्य प्रविष्ट था ।
द्वार पर कृप और सात्वत, सकल आयुध ले अड़े ।
अचल के दो श्रृङ्ग हों ज्यों, धरा पर उन्नत बड़े ।।३।।

खोज पार्षत-शिविर[3] पहुँचे, द्रौणि अरि शयनस्थ था ।
जगा उसको देख भीषण, मन्यु[4] जो हृदयस्थ था ।
किया बोधित मार ठोकर, विषम बाएं चरण से ।
अब बचा सकता न कोई मूढ़ तुझको मरण से ।।४।।

याद कर जब त्याग आयुध, पिता मम ध्यानस्थ थे ।
ऊर्ध्वगामी प्राण करने में, सुताकुल व्यस्त थे ।
केश सित उनके पकड़कर, किया दारुण कर्म था ।
अरे शठ तब हुआ विस्मृत, तुझे क्षत्रिय धर्म था ।।५।।

भूमि पर पटका पकड़कर, केश द्रुपद कुमार के ।
भूल बैठा हो भयातुर, दाव सब प्रतिकार के ।
नहीं तू पापिष्ठ वध के, योग्य शस्त्र प्रहार से ।
प्राण ले लूँगा तुम्हारे, चरण युग की मार से ।।६।।

शोर सुनकर भीति दायक, वधू कारत रो उठीं ।
जगे रक्षक किन्तु उनकी बुद्धि कुण्ठित हो उठीं ।
उत्तमौजा के शिविर में द्रुपदसुत - सूदन गया ।
किया मर्दित वीर भूपर, सर्वदा को सो गया ।।७।।

गदा ले अपनी सुगुर्वी[५], युधामन्यू आ गया ।
चोट उसकी वक्ष पर दृढ़ गौतमी - सुत खा गया ।
छीन उसकी गदा पटका, धरा पर वलवान ने ।
मसल डाला उसे पशुवत, परम हिंसावान ने ।।८।।

और फिर ले खड्ग कर में, बढ़ा वह अति उग्र था ।
भूमि को पाञ्चाल-हीना, बनाने को व्यग्र था ।
नाद सुन द्रुपदात्मजा - सुत, पांच जो वलवीर थे ।
सब महारथ पटु धनुर्धर, युवा अति रणधीर थे ।।९।।

यान चढ़ शर - वृष्टिरत वे, आशु रण में आ गए ।
घेर परितः[६] द्रोण-सुत को, वीर उस पर छा गए ।
उतर रथ से परम क्रोधन, त्वरित दौड़ा काल सा ।
काटता असि से चतुर्दिक, बाण निर्मित जाल सा ।।१०।।

विंध्य नग[७] सा धीर रण में, वीर अति प्रतिविन्ध्य था ।
रूप विद्या समर कौशल, में सदा अभिवन्द्य था ।
रोक किन्तु प्रहार उसका, द्रौणि ने तलवार से ।
किया प्रेपित यमपुरी को, कुक्षि केन्द्रित धार से ।।११।।

मुक्त करने शिविर को उस, परम भीषण त्रास से ।
किया दृढ़ आघात तव सुतसोम ने निज प्रास से ।
उठा आयत खड्ग दौड़ा, द्रौणि अभिमुख[८] वेग से ।
किन्तु काटी भुजा उसकी विप्र ने संवेग से ।।१२।।

और अगले क्षण विदारित वक्ष था सुतसोम का।
वन गया शाकल्य मानो वीर उस रण होम का ।
बढ़ा द्रौणायनि गरजता, रुधिर क्लिन्न[९] शरीर था।
अरि शिविर प्रतिमुख प्रवाहित, प्रलय काल समीर था।।१३।।

शतानीक चला उठाए, भुजा से रथ चक्र को ।
रोकने ज्यों चला नाकुलि[१०], नियति के दुश्चक्र को ।
किया क्रूर प्रहार सत्वर, द्रौणि के दृढ़ वक्ष पर ।
रहा अविचल शूर सोढ़ा[११], हिल गया प्रति पक्ष पर ।।१४।।

किया गुरू आघात भूपर, नकुल नन्दन गिर गया ।
द्रौणि असि से छिन्न होकर, दूर उसका शिर गया ।
प्रस्फुरित कुछ क्षण हुआ तनु, काष्ठवत् निश्चल हुआ ।
द्विपत[१२] के प्रतिकार का वह उपक्रम निष्फल हुआ ।।१५।।

बढ़ा श्रुतकर्मा परिध ले, तभी भीषण हाथ में ।
चला करने हाथ दो-दो, द्रोणसुत के साथ में ।
चर्मयुत[१३] बायीं भुजा पर, किया क्रूर प्रहार था ।
नाम के अनुरूप निर्भय, वीर का आचार था।।१६।।

झेलकर वह चोट दौड़ा; उरग सा फुफकारता ।
अग्निमय लोचन युगल से, शत्रु ओर निहारता।
आस्य[१४] पर असि को चलाया, विकृत आकृति हो गई ।
गिरा श्रुतकर्मा मही पर, चेतना थी खो गई ।।१७।।

शोर सुनकर आ गया था, महारथ श्रुतकीर्ति भी।
धनुर्धर जिसकी धरा पर, प्रथित विपुला कीर्ति थी ।
विशिख छादित किया क्षण में, कुंभजात[१५] अपत्य[१६] को ।
देख पर पाया न आगत, निज कराल अपथ्य[१७] को।।१८।।

वैरि के वर वार करके, निवारित दृढ़ चर्म से।
युद्ध कोविद वे सुपरिचित, खड्ग चालन मर्म से।
बढ़े अद्भुत त्वरा से कर में, कठिन करवाल[१८] ले ।
रक्त रञ्जित हो उठी वह, प्रखर अरि का भाल ले।।१९।।

कीर्ति-शेषित किया क्षण में, द्रौणि ने श्रुतकीर्ति को ।
और विस्तृत किया भू पर, शवों की आकीर्ति[१९] को ।
व्योम गुञ्जित कर दिया फिर भैरवी हुंकार से ।
दिशाएं प्रतिध्वनित होतीं, शत्रु हाहाकार से।।२०।।

तब प्रभद्रक गण सहित रथ चढ़ शिखण्डी आ गया ।
आयुधों की कान्ति से घन, नैश[२०] तम भय खा गया ।
एक साथ प्रहार सारे वीर वर करने लगे ।
देख अक्षत द्रौणि को उर, भीति से भरने लगे।।२१।।

भीष्म - हन्ता शिखण्डी, ने घोर रण के मध्य में ।
एक शित नाराच मारा, द्रोणसुत - भ्रूमध्य में ।
एक क्षण को लोचनों के, सामने तम छा गया ।
किन्तु क्रोधानल ज्वलित हो, गहन तम को खा गया।।२२।।

खड्ग से दो खण्ड अरि की, देह के फिर कर दिए।
भीष्म वध के घाव उसने, शोध लेकर भर लिए ।
किए प्रेषित सब प्रभद्रक, द्रौणि ने यम लोक को।
आज था उसको मिटाना, कुरु जनाधिप शोक को।।२३।।

बल विराट अशेष मर्दित, किया आज विराट का।
कौन रोके रौद्र ताण्डव, उस पुरुप विभ्राट का ।
द्रुपद के सव पुत्र पौत्रों, को किया निष्प्राण था।
उस भयानक वीर से कव, कौन पाता त्राण था।।२४।।

पाण्डवों के शिविर से सव, पटु धनुर्धर आ गए ।
उन सहस्रों वीर गण के, शर चतुर्दिक छा गए ।
तव हुआ आरुढ़ रथ पर, ले शरासन हाथ में ।
गिरे शतशः वीर तत्क्षण, वाण की वरसात में।।२५।।

आर्तनाद मुमूर्षुजन का, सिंह-नाद प्रवीर का ।
भभकता पावक वढ़ा पा, सख्य तीव्र समीर का ।
दौड़ते सव ओर व्याकुल, हुए दन्ति तुरङ्ग[२१] थे।
कुचलकर जन को विनशते, सैन्य के चतुरङ्ग थे।।२६।।

लगा दी थी आग कृप ने, शिविर में हार्दिक्य ने।
किया सवको मूढ़ उस दिन, नाश के आधिक्य ने।
बचे योद्धा भागते जब, द्वार पर आने लगे।
भोज कृप के शस्त्र से भव, पार वे जाने लगे।।२७।।

दो घड़ी भर मृत्यु का वह, विभीषण ताण्डव चला ।
शिविर जलता था कि मानों, अपर यह खाण्डव जला ।
कपर्दी[२२] की कोप ज्वाला में, त्रिपुर ज्यों जल रहा ।
क्षय-पराजित दीन सर्जन, हाथ अपने मल रहा ।।२८।।

गए तीनों अब शिविर में, मृत्यु की बस शान्ति थी।
वदन पर उन विजताओं, के न कुछ भी कान्ति थी ।
चमक थी जो चक्षुओं में, हिंसना की लुप्त थी।
और मानवता अभी तक, उर दरी[२३] में सुप्त थी ।।२९।।

चले तीनों रूद्र अन्तक और अनल समान थे ।
नाश - मय प्रतिशोध के वे, प्रज्ञवलित प्रतिमान थे ।
उपस्थित हो गया तीनों, गुणों का ज्यों साम्य था ।
प्रकृति को मानो प्रलय ही आज इस विधि काम्य था ।।३०।।

सार छन्द

कोप और प्रतिहिंसा से जब, पराभूत नर होता ।
रिपुजय की वस भ्रान्ति स्वयं वह, मानवता को खोता ।
कितना अधःपतित कर देती प्रतिशोधी विप धारा ।
जय उन्माद भरा गर्वित है, यद्यपि सब कुछ हारा ।।३१।।

सोच रहे कृप विकल मार्ग में, समय कहाँ ले आया ।
द्विजता गुरुता त्याग वधिक वन, हिंसन मुझको भाया ।
भय आशंका और ग्लानि ही, इसकी परिणति होगी ।
जिसकी जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती ।।३२।।

अहंकार अभिवर्धित करता, नित अधिकार तृपा ही ।
निर्मित करता शत्रु स्वार्थप्रिय, विग्रह- युक्त मृषा ही ।
गिर सकते हैं पापपंक में हमसे यदि व्रतधारी ।
विवश न हों क्यों साधारण जन, शक्ति कोप की भारी ।।३३।।

हुआ सिद्ध हमसे न असुरता, की कुछ भी है दूरी ।
विदा हुई अव से नरता - द्युति, जो कुछ रही अधूरी ।
जो विभीपिका का प्रेमी हो, क्षय में मोद मनाता ।
उसका कैसे हो सकता है, मानवता से नाता ।।३४।।

सरसी छन्द

हुआ सघनतर तिमिर शिविर-दाहक-पावक था दूर ।
कालकिरात विरत उपक्रम से निश्चल था अब क्रूर ।
तारागण थे मानो वपु को छोड़ नभोगत[२४] प्राण ।
त्याग मेदिनी गये गगन में मानों पाने त्राण ।।३५।।

विस्फारित नयनों से मानों देखें देव असंख्य ।
कर सकता मनुसुत ऐसा भी वसुधा पर कटु संख्य[२५] ।
होता स्मृत उन्हें त्रिपुरारीकृत[२६] वह त्रैपुर दाह ।
मानवता की चिता या कि वह जले शान्ति की चाह ।।३६।।

सन्दर्भ सूची

१. आलिंगन, २. गोद, ३. धृष्टद्युम्न, ४. क्रोध, ५. वहुत भारी, ६. चारों ओर, ७. पर्वत, ८. की ओर, ९. भीगा हुआ, १०. नकुल पुत्र, ११. सहन करने वाला, १२. शत्रु, १३. ढाल युक्त, १४. मुख, १५. द्रोण, १६. पुत्र / सन्तान, १७. हानि, १८. तलवार, १९. फैलाव, विखराव, विस्तार, २०. रात्रि का, २१. घोड़े, २२. शिव जी, २३. गुफा, २४. आकाश गये हुए, २५. युद्ध, २६. शिव जी द्वारा किया गया।